श्री सीता समाहित स्थलः सीतामढ़ी

कथा, परिचय एवं इतिहास

प्रस्तुति : इन्दु पुंज एवं सत्यनारायण प्रकाश (सत्ती) पुंज

श्री सीता जी मन्दिर (सीतामढ़ी)

श्री सीता समाहित स्थल ट्रस्ट, सीतामढ़ी

पो. सीतामढ़ी, जिला भदोही-221309 (उत्तर प्रदेश)

श्री सीता समाहित स्थल में स्थापित श्री सीता मन्दिर
के प्रथम तल में श्री सीता जी की मूर्ति
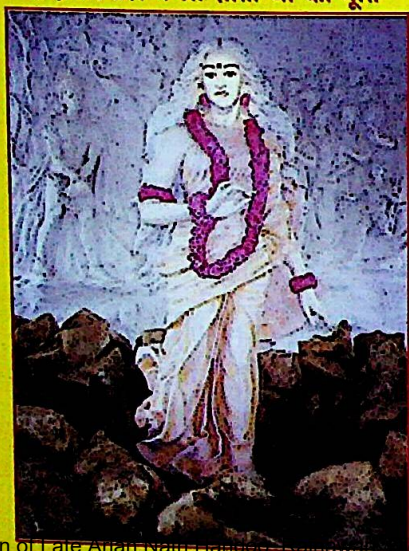
भूमि में समाहित होती भगवती
सीता जी की मूर्ति (मन्दिर का निचला स्थल)

श्री सीता समाहित स्थल : सीतामढ़ी

कथा, परिचय एवं इतिहास

प्रस्तुति : इन्दु पुंज एवं सत्यनारायण प्रकाश (सत्ती) पुंज

श्री सीता समाहित स्थल ट्रस्ट, सीतामढ़ी

पो० सीतामढ़ी, जिला भदोही-221309 (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशक :

पं० कन्हैया लाल दयावन्ती पुंज चैरिटेबल सोसायटी

पंजीकृत कार्यालय :

पुंज लायड हाऊस, 17-18, नेहरू प्लेस,
नई दिल्ली-110019
दूरभाष : 6445532

प्राप्ति स्थान :

श्री सीता समाहित स्थल ट्रस्ट, सीतामढ़ी
पो० सीतामढ़ी, जिला भदोही-221309 (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तुति :

श्रीमती इंदु पुंज एवं श्री सत्यनारायण प्रकाश (सत्ती) पुंज

सम्पादक :

श्री चिरंजीव शास्त्री

अक्षर-योजन :

साइबर ग्राफिक्स
44, शिवचरण लाल रोड, इलाहाबाद -211003
दूरभाष : 402089, 650409

मुद्रक :

ग्राफिक आफसेट
टैगोर टाउन, इलाहाबाद
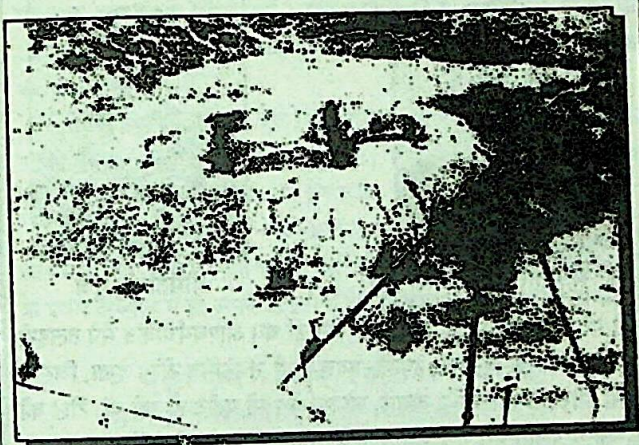
सीतामढ़ी
श्री सीता जी की तपोभूमि
एवं
समाहित स्थल

● स्वामी जितेन्द्रानन्द तीर्थ

फरवरी 1992 में मैं ऋषिकेश से वाराणसी के लिए पुनीत सलिला भागीरथी के किनारे किनारे पदयात्रा में निकल पड़ा। कई जिलों को पीछे छोड़ता हुआ मैं इलाहाबाद पार कर कुछ ही दिन बाद एक छोटे से पिछड़े गांव सीतामढ़ी में पहुंचा। यहां पर भगवती सीता मां धरती की कोख में सदा-सर्वदा के लिए समाहित हो गई थीं। मैं उस पवित्र स्थल के दर्शनार्थ गया जो गंगा जी से कुछ

श्री सत्यनारायण प्रकाश पुंज

श्रीमती इंदु पुंज

दूरी पर महर्षि वाल्मीकि आश्रम के पास ही था। आश्चर्यचकित मैंने तलहटी की उपत्यका के केन्द्र में, प्रकृति-प्रदत्त मिट्टी से निर्मित टीला देखा, जिसके चारों ओर 30 फीट ऊंची दीवारें, जो पर्वतीय सी प्रतीत हो रही थीं, टीले की सुरक्षा में प्रस्तुत थीं। उसी उपत्यका में पश्चिम की ओर से आते प्रबल जल-प्रवाह को भी देखा जो टीले की परिक्रमा करते हुए पूर्व की ओर प्रस्थान कर जाता था। सैकड़ों वर्षों से, प्रबल जल प्रवाह के आक्रमण को झेलते हुए भी यह मृत्तिका टीला, आज तक उसी तरह सुरक्षित कैसे रह पाया है, यह उत्कण्ठा मुझे सम्मोहित बना गई। मैं अनिमेष लगातार कई मिनटों तक उसी टीले को देखता रह गया और अकस्मात् मुझे अन्तर्प्रेरणा मिली कि मैं वहाँ कुछ दिन और रुकूँ। मैंने अपनी आगे की यात्रा स्थगित कर दी। भगवती सीता ने वहां पर ही समाधि ली है, इस तथ्य को जानने के लिए तथा टीले से संबंधित रहस्य की गुत्थी सुलझाने के लिए मैं वहां पर ही रुक गया। कुछ दिनों बाद मैंने टीले के चारों ओर फैली, कंटीले, जंगली झाड़ियों को साफ करके, वहां पर ही ध्यान के लिए बैठना शुरू कर दिया। वहां पर प्राप्त शान्ति तथा परमानन्द को शब्दों में व्यक्त कर पाने में मैं अपने आपको अक्षम अनुभव करता हूँ। मुझे तो आभास होता है कि वहां के वातावरण में कुछ ऐसा तरंगित प्रकंपन है जो समाधि लगाने में और सहयोग देता है। तब से अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और अब भगवती सीता के स्मारक के रूप में बृहद् कीर्तिस्तम्भ स्थापित हो चुका है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आद्याशक्ति माँ अपने कुछ चुने हुए पुत्रों को इस दैवी कार्य को करने के लिए जागृत करके, अनवरत प्रेरणा भी दे रहीं

हैं। दैवी शक्ति ने, महिमा मण्डित भगवती सीता जी का स्मारक, उस. पवित्र स्थान पर बनवाने के लिए, जहाँ उन्होंने समाधि ली है, पुंज लायड हाउस के उद्योगपति श्री सत्यनारायण प्रकाश पुंज एवं उनकी सहधर्मिणी श्रीमती इन्दु पुंज का चयन किया है।

श्री सत्यनारायण प्रकाश पुंज जिन्हें स्नेह से लोग सत्तीपुंज कहते हैं तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीमती इन्दु पुंज ने स्वतः भगवती सीता जी का भव्य एवं सुन्दरतम स्मारक बनाने का जिम्मा लिया है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने महान् काव्य–कृति रामायण की भूमिका में अपने आश्रम की भौगोलिक स्थिति का भी वर्णन किया है। उन्होंने अपने प्रथम काण्ड के प्रथम अध्याय में ही अपने आश्रम में देवर्षि नारद के आगमन की चर्चा की है।

स मुहूर्तं गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा।
जगाम तमसातीरम् जाह्नव्यास्त्वविदूरतः।।

आपसी वार्ता के मुहूर्त पश्चात् ही महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्यों भारद्वाज आदि के साथ तमसा में स्नानार्थ गए। तमसा के तट पर ही आश्रम है और आश्रम के समीप ही गंगा बहती है।

मूल गोसांई चरित्र के अनुसार सन् 1628 में गोस्वामी तुलसीदास प्रयाग में गंगा के किनारे–किनारे प्रयाग से काशी को चले। मार्ग में वाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी में आए। वहाँ वे 3 दिन रहे और उन्होंने इस पुनीत स्थान की महिमा में तीन कवित्त बनाए। तुलसीदास जी की इस यात्रा का वर्णन उनके शिष्य श्री बेनीमाधवदास ने इस प्रकार किया है–

मन ठीक किए मग आगे बढ़े
चलिकै पुनि सुरसरि तीर कढ़े
तब तीरहि तीर चले चित्त दै
भई सांझ जहां सो तहां टिकिगै
दिग बारिपुरा बिच सीतामढ़ी
तहं आसन डारत वृत्ति चढ़ी
नहिं भूख न नींद विछित्त दशा
उर पूरब जन्म प्रसंग बसा

सीतामढ़ी के लिए मार्ग दर्शक चित्र
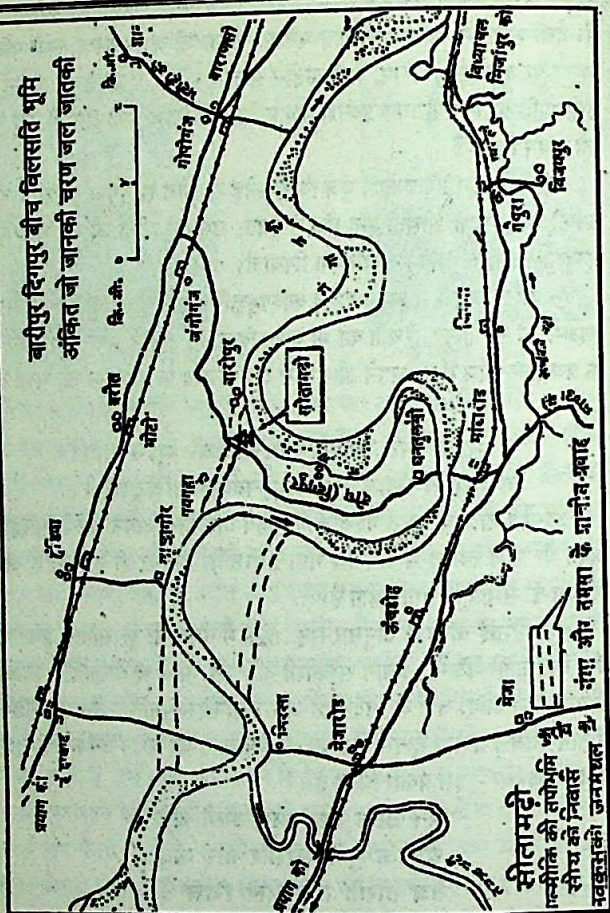
दोहा

सीता बट तक तीन दिन बस सुकवित्त बनाय।
बंदि छोड़ावत विधि नृप पहुंचे काशी जाय।।

"उर पूरब जनम-प्रसंग बसा" से कई संकेत हैं कि यहां आते ही तुलसीदास जी को अपने उस पूर्व जन्म का स्मरण हो आया जब वे वाल्मीकि थे और इसी स्थान पर निवास करते थे। तुलसी वाल्मीकि के अवतार माने जाते हैं जैसे कि भक्तिमाल की इस पंक्ति से स्पष्ट है।

''कलिकुटिल जीव निस्तार हित, वाल्मीकि तुलसी भयो''

तुलसी के सीतामढ़ी सम्बन्धी जिन 3 कवित्तों का उनकी कवितावली में उल्लेख है-

सीतावट-वर्णन

जहां बालमीकि भए ब्याध तें मुनिंद्र साधु
'मरा मरा' जपे सुनि सिख ऋषि सात की।
सीय को निवास, लव-कुश को जनम थल
'तुलसी' छुवत छांह ताप गरै गात की।।
बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहै,
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकीचरन-जलजात की।।१३८।।

(उत्तर काण्ड, कवितावली)

– जहां सप्तर्षियों का उपदेश सुनकर (राममंत्र को उलटे क्रम से) 'मरा-मरा' जपते हुए वाल्मीकि जी व्याध से महामुनि हो गये, जो श्री सीताजी का निवास स्थान और कुश तथा लव का जन्मस्थान था, तुलसीदास जी कहते हैं- जहां की छाया का स्पर्श होते ही शरीर का सारा ताप शांत हो जाता है, वह वृक्षराज सीतावट श्री गंगा जी के तट पर शोभायमान है। उसके दर्शनमात्र से पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है। यह स्थान वारिपुर और दिगपुर- इन दो गांवों के बीच में है और श्री जानकी के चरण-कमलों से अंकित है।

मरकत-बरन परन, फल, मानिक से
लसै जटाजूट जनु रूख वेष हरु है।

सुषमा को ढेरु, कैंधो सुकृत सुमेरु कैंधों,
संपदा सकल मुद-मंगल को घरु है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये
प्रतीति मानि 'तुलसी' विचारी काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनि अवनि सोहै
रामरमनी को बट कलि कामतरु है।१३९।

उसके पत्ते मरकत मणि के समान हरे तथा फल माणिक्य के सदृश (लाल रंग के) हैं। अपनी जटाओं के कारण वह ऐसी शोभा देता है, मानों वृक्षरूप में महादेव जी ही हों। वह मानो सुन्दरता का पुञ्ज है, अथवा सुकृत का सुमेरु है, किंवा सब प्रकार की सम्पत्ति, आन्नद और मंगल का घर है। यदि 'यह किसका स्थान है' (अर्थात् जानकी जी का निवास स्थल है) इसका विचार करके विश्वास और प्रीतिपूर्वक उसका सेवन किया जाये तो वह सब प्रकार के इच्छित फल देता है। वह सुन्दर भूमि श्री गंगाजी के तट पर, सुशोभित है, यह रामवल्लभा श्री जानकी जी का वट कलियुग में कल्पवृक्ष के समान है।

देवधुनि पास, मुनिबास, शी-निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग की बिराग को पुनीत पीठ
रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारि हैं।
'आयसु', 'आदेश', 'बाबा' भलो-भलो 'भाव-सिद्ध'
'तुलसी' विचार जोगी कहत पुकारि हैं।
राम भगतन को तो कामतरु तें अधिक,
सियबट सेए करतल फल चारि हैं।१४०।

साधारण वटवृक्ष में भी श्रीमहादेवजी का निवास होता है, फिर इसके समीप तो गंगाजी का तट तथा मुनिवर वाल्मीकि जी का आश्रम है; जहाँ श्री सीताजी ने निवास किया था। अतः इसकी महिमा का तो वर्णन ही कौन कर सकता है। यह योग, जप, यज्ञ और वैराग्य के लिए बड़ा पवित्र पीठ है; किन्तु रागी पुरुषों को, जो इसे बाहरी दृष्टि से देखेंगे; यह बड़ा रूखा जान पड़ता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि यहाँ के लोग विचारपूर्वक 'जो आज्ञा', 'भैया' आदि

शिष्ट शब्दों का स्वभाव से ही प्रयोग करते हैं। यह सीतावट रामभक्तों के लिए तो कल्पवृक्ष से भी अधिक है, क्योंकि इसके सेवन से (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) चारों फल करतलगत हो जाते हैं (जब कि कल्पवृक्ष से अर्थ, धर्म और काम–केवल तीन ही फल मिलते हैं)।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह।।१५।।

(श्रीमद्भागवत, नवम स्कन्ध, अध्याय-१९)

– भगवान् श्रीराम के द्वारा निर्वासित सीताजी ने अपने पुत्रों को वाल्मीकि जी के हाथों में सौंप दिया और भगवान श्रीराम के चरणकमलों का ध्यान करती हुईं वे पृथ्वीलोक में चली गईं।।१५।।

सीतामढ़ी एक महान ऐतिहासिक स्थल ही नहीं अपितु एक दिव्य तीर्थ भी है जिसका चयन स्वयं भगवान राम ने भगवती सीता के द्वितीय वनवास के लिए किया। यह वह पवित्र भूमि है जहां भगवती सीता ने अपने जीवन के अन्तिम दिन घोर कष्ट में बिताए और अन्त में यहां ही धरती मां की गोद में समा गईं।

सीतामढ़ी वाराणसी तथा प्रयाग के बीचोंबीच स्थित है। दोनों ही तरफ से यहां पहुंचा जा सकता है। प्रयाग से अथवा वाराणसी से चलकर गोपीगंज पहुंचा जा सकता है जो लगभग दोनों ही स्थानों से 60 कि०मी० की दूरी पर है। गोपीगंज रेल मार्ग तथा जी०टी०रोड से जुड़ा है। गोपीगंज से कोई भी बस, टैक्सी या स्कूटर लेकर जंगीगंज मार्ग पर बीस कि०मी० पार करके सीतामढ़ी पहुंचा जा सकता है। अपना वाहन हो तो इलाहाबाद से वाराणसी जाते हुए या वाराणसी से इलाहाबाद आते हुए बिट्टी से 7 किलोमीटर या जंगीगंज से 13 किलोमीटर का रास्ता तय कर आधे घंटे में सीतामढ़ी पहुंचा जा सकता है।

(कालीदास रचित महाकाव्य 'रघुवंश' से)

सीता-परित्याग

स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्प पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः।।३१।।

नगरी की यह शोभा देखकर सुन्दर बोलनेवाले, सदाचारी और शेषनाग के समान बड़ी-बड़ी बांहों और जाँघों वाले शत्रुविजयी राम ने अपने भद्र नाम के दूत से पूछा-कहो भद्र! हमारे विषय में प्रजा क्या कहती है।

निबन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः।।३२।।

पहले तो भद्र चुप रहा, पर जब बार-बार उससे पूछने लगे तब वह बोला-हे नरश्रेष्ठ! जनता आपकी सब बातों की प्रशंसा करती है, किन्तु आपने राक्षस के घर में रहने वाली देवी सीता को फिर से ग्रहण कर लिया है, इसे लोग अच्छा नहीं समझते।

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण।
अयोघनेनाय इवाभिप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे।।३३।।

अपनी पत्नी पर लगाए हुए इस भीषण कलंक को सुनकर सीतापति राम का हृदय वैसे ही फट गया जैसे घन की चोट से तपाया हुआ लोहा फट जाता है।

किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषमुत संत्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तः।।३४।।

वे मन में सोचने लगे कि अब दो ही उपाय हैं। या तो मैं इस बात को अनसुनी ही कर दूँ और टाल जाऊँ या फिर निर्दोष पत्नी को सदा के लिए छोड़ दूँ। उस समय उनका चित्त हिंडोला बना हुआ था, वे निश्चय ही नहीं कर पा रहे थे कि इन दोनों में क्या करना चाहिए क्या नहीं।

निश्चित्य चानन्यनिवृत्तिवाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत्।
अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः।।३५।।

पर उस कलंक को मिटाना चाहिए। क्योंकि यशस्वियों को अपना यश अपने शरीर से भी अधिक प्यारा होता है, फिर स्त्री आदि भोग की वस्तुओं की तो बात ही क्या।

स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान्।
कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम्।।३६।।

उदास मुँह से राम ने भाइयों को बुलाया तो वे भी उनकी दशा देखकर सन्न रह गये। अपने भाइयों से राम बोले-

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम्।
मत्तः सदाचारशुचेः कलंकः पयोदवातादिव दर्पणस्य।।३७।।

यद्यपि मैं सदाचारी होने के कारण पवित्र हूँ, फिर भी जैसे भाप पड़ने से स्वच्छ दर्पण भी धुँधला हो जाता है, वैसे ही देखो, सूर्यवंशी राजर्षियों के कुल में मेरे कारण कैसे कलंक लग रहा है।

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरंगेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः।।३८।।

जैसे पानी की लहरों के ऊपर तेल की बूँद फैल जाती है वैसे ही इस समय घर-घर मेरी निन्दा फैल रही है। इसलिए जैसे हाथी अपने अलान से खीझ कर उसे उखाड़ने की चेष्टा करता है वैसे ही मैं भी अपने इस कलंक को अब नहीं सह सकता।

तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव।।३९।।

इस समय यद्यपि सीता के पुत्र होनेवाला है तो भी अपने कलंक को मिटाने के लिए मैं सब मोह तोड़कर उसे वैसे ही छोड़ दूँगा जैसे पिता की आज्ञा से मैंने राज्य छोड़ दिया था।

अवैमि चैनामनघेति किंतु लोकापवादो बलवान्मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।।४०।।

मैं जानता हूँ कि वह निर्दोष है, पर बदनामी सत्य से भी अधिक बलवती होती है। देखो ! निर्मल चन्द्र-बिम्ब के ऊपर पड़ी हुई पृथ्वी की छाया को लोग चन्द्रमा का कलंक कहते हैं और झूठे होने पर भी सारा संसार इसे ही ठीक मानता है।

रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः स वैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः।।४१।।

तुम कहोगे कि यदि ऐसा था तो राक्षसों को क्यों मारा। उसका उत्तर यह है कि सीता को छुड़ाने के लिए मैंने जो राक्षसों को मारा। वह मेरा प्रयत्न सीता को

निकाल देने से बेकार नहीं कहा जायेगा क्योंकि वह तो मैंने अपनी स्त्री के हरण का उन राक्षसों से बदला लिया है। क्योंकि जब कोई साँप पैर के नीचे दब जाता है तब वह रक्त के लोभ से थोड़े ही डँसता है, वह तो बदला लेने के लिए ही डँसता है।

तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्वृतवाच्यशल्यान्प्राणन्मया धारयितुं चिरं वः।।४२।।

इसलिए यदि तुम लोग इस कलंक के बाण को मेरे हृदय से निकालकर मुझे जीवित रखना चाहते हो तो केवल सीता की दशा पर दया करके उसका पक्ष लेकर तुम मेरे इस निश्चय का विरोध मत करो।

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम्।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा।।४३।।

जब भाइयों ने देखा कि राजा इतनी निठुराई करना चाहते हैं तब भाइयों में से न तो कोई उनका समर्थन ही कर सका, न विरोध ही।

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश।।४४।।

तीनों लोकों में प्रसिद्ध यशस्वी, अपनी बात के पक्के राम ने जब देखा कि लक्ष्मण उनकी आज्ञा मानने को तत्पर हैं, तब वे लक्ष्मण से कहने लगे – लक्ष्मण! तुम बड़े अच्छे हो। और यह कहकर उन्हें एकान्त में ले गए और बोले–

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्।।४५।।

तुम्हारी गर्भिणी भाभी तपोवन देखना चाहती ही है, इसलिए उन्हें इसी बहाने से रथ पर ले जाकर वाल्मीकि जी के आश्रम तक पहुँचाकर छोड़ आओ।

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहतं द्विषद्वत्।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।।४६।।

लक्ष्मण ने सुन ही रक्खा था कि पिता की आज्ञा पाकर परशुरामजी ने अपनी माता को वैसे ही निर्दयता के साथ मार डाला जैसे कोई अपने शत्रु को मारे। इसलिए उन्होंने पिता के समान राम की आज्ञा सिर चढ़ा ली, क्योंकि बड़ों की आज्ञा में मीन-मेख निकालना ठीक नहीं।

अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरंगैः।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे।।४७।।

सीता जी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं कि लक्ष्मण हमें तपोवन दिखाने ले जा रहे हैं। लक्ष्मणजी उन्हें ऐसे रथ पर चढ़ाकर ले चले जिसे स्वयं सुमन्त्र हाँक रह थे और जिसके घोड़े ऐसे सधे हुए थे कि रथ के चलते समय गर्भिणी सीता को तनिक भी हचक नहीं लगने पाती।

सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्।।४८।।

मनोहर प्रदेशों में रथ पर जाती हुई सीता जी यह सोचकर बड़ी प्रसन्न हुईं कि मेरे प्राणप्रिय सदा मेरे मन की ही बात करते हैं। उन्हें क्या पता था कि इस समय वे मेरे लिए मनोरथ पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के वदले उस असिपत्र के वृक्ष के समान कष्टदायक हो गए हैं जिसके पत्ते तलवार के समान पैने होते हैं।

जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन।।४९।।

लक्ष्मण ने सीता जी से मार्ग में कुछ भी नहीं बताया कि तुम पर क्या विपत्ति आनेवाली है, पर सीताजी के दाहिने नेत्र ने फड़ककर आगे आनेवाले दुःख की सूचना दे ही तो दी।

सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंस करणैरबाह्यैः।।५०।।

यह असगुन होते ही उनका मुँह उदास हो गया और वे मन ही मन मनाने लगीं कि भाइयों के साथ राजा सुख से रहें, उन पर कोई आँच न आवे।

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन्।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात्।।५१।।

मार्ग में गंगा जी पड़ीं। उनमें जो लहरें उठ रहीं थीं वे बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता सीता को वन में छोड़ने के लिए ले जाते हुए लक्ष्मण से मानों हाथ हिलाकर कह रही थीं कि ऐसा न करो।

रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य।
गंगा निषादाहृतः नौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः।।५२।।

गंगा जी के तट पर पहुँचकर सारथी ने रास खींच ली। सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले लक्ष्मण ने सीता जी को रेती पर उतार लिया और केवट ने जो नाव लाकर दी उस पर चढ़कर सीताजी के साथ गंगा से भी पार हो गए और अपनी उस

प्रतिज्ञा से भी पार हो गए जो उन्होंने सीता को छोड़ने के लिए राम से की थी।

अथ व्यवस्थापितवाक्कथंचित्सोमित्ररन्तर्गतवाष्पकण्ठः।
औत्पातिको मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार।।५३।।

पार पहुँच कर लक्ष्मण ने आँसू रोककर, रुँधे हुए गले से सीता जी को राजा की आज्ञा इस प्रकार सुनाई जैसे कोई भयंकर बादल ओले बरसा रहा हो।

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम।।५४।।

जैसे लू लगने से लता के फूल झड़ जाते हैं और वह सूखकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है वैसे ही इस अपमानजनक बात को सुनकर सीता के आभूषण भी गिर पड़े और वे भी अपनी माँ पृथ्वी की गोद में गिर पड़ीं।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत्।।५५।।

उस समय पृथ्वी ने सीता जी को मानों दुविधा के कारण अपनी गोद में नहीं समा लिया कि इक्ष्वाकु-वंशी सदाचारी पति इस प्रकार सीता जी को अचानक क्यों छोड़ देंगे।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।।५६।।

मूर्छा आ जाने से उन्हें उस समय तो दुःख नहीं हुआ, पर जब वे मूर्छा से जागीं तब उनके हृदय में बड़ी व्यथा हुई। लक्ष्मण ने प्रयत्न करके जो उनकी मूर्छा दूर की वह बात उन्हें मूर्छा से भी अधिक कष्ट देने वाली जान पड़ी।

न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द।।५७।।

वे इतनी साध्वी थीं कि निरपराध पत्नी को निकालने वाले अपने पति को उन्होंने कुछ भी बुरा-भला नहीं कहा वरन् बार-बार वे अपने भाग्य को ही कोसने लगीं।

आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः।
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः।।५८।।

लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया बुझाया और वाल्मीकि का आश्रम दिखाकर कहा-देवि! मैं पराधीन हूँ। इसलिये स्वामी की आज्ञा से मैंने आपके साथ जो कठोर व्यवहार किया है उसे आप क्षमा कीजिये।

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम्।।५९।।

सीता जी उठीं और लक्ष्मण से बोलीं–हे सौम्य! मैं तुम पर प्रसन्न हूं! तुम बहुत दिन तक जियो। क्योंकि जैसे इन्द्र के छोटे भाई विष्णु सदा अपने बड़े भाई की आज्ञा मानते हैं वैसे ही तुम भी अपने बड़े भाई की आज्ञा माननेवाले हो।

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति।।६०।।

तुम जाकर सभी सासों से मेरा प्रणाम कहना कि मेरे गर्भ में आपके पुत्र का तेज है। इसलिये आप लोग हृदय से उसकी कुशल मनाते रहिएगा।

वाच्यास्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।।६१।।

और राजा से जाकर तुम मेरी ओर से कहना कि आपने अपने सामने ही मुझे अग्नि में शुद्ध पाया था। इसके समय अपजस के डर से आपने मुझे छोड़ दिया है। यह क्या उस प्रसिद्ध कुल को शोभा देता है जिसमें आपने जन्म लिया है?

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः।।६२।।

पर नहीं, आप तो सबकी भलाई करने वाले हैं, आप अपने मन से हमारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। यह सब मेरे पूर्व जन्म के पापों का ही फल है।

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती।।६३।।

जान पड़ता है कि कुछ समय पहले आप राजलक्ष्मी का तिरस्कार करके, मेरे साथ वन में चले गये थे वह राज्यलक्ष्मी मुझसे रुष्ट हो गई है और उससे आपके घर में मेरा प्रतिष्ठा–पूर्वक रहना देखा नहीं गया।

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात्।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने।।६४।।

पिछली बार आपकी कृपा से मैंने वनवास के समय बहुत सी ऐसी तपस्विनियों को अपने यहाँ आश्रय दिया था जिनके पतियों को राक्षसों ने सता रक्खा था। अब आप ही बताइए कि आपके रहते हुए मैं किस मुँह से उन्हीं तपस्विनियों की आश्रिता होकर रहूँगी।

किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः।।६५।।

यदि मेरे गर्भ में आया हुआ आपका वह तेज बाधा न देता जिसकी रक्षा करना आवश्यक है, तो मैं आपसे सदा के लिए बिछुड़े हुए प्राण भी छोड़ देती।

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।।६६।।

पर पुत्र हो जाने पर मैं सूर्य में दृष्टि बाँधकर ऐसी तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी आप ही मेरे पति हों, आपसे मुझे अलग न होना पड़े।

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया।।६७।।

मनु ने कहा है–राजाओं का धर्म वर्णों और आश्रमों की रक्षा करना है इसलिए घर से निकाल देने पर भी आप यह समझकर मेरी देख–भाल करते रहिएगा कि सीता भी उनकी प्रजा और तपस्विनी है।

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभारा चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः।।६८।।

यह सुनकर लक्ष्मण बोले–मैं सब कह दूँगा। यह कहकर ज्योंहि वे वहाँ से चलकर आँखों से ओझल हुए कि विपत्ति के भार से व्याकुल होकर सीता जी, डरी हुई कुररी के समान डाढ़ मार–मारकर रोने लगीं।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।।६९।।

उनका रोना सुनकर मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूल के आँसू गिराने लगे और हरिणियों ने मुँह में भरी हुई घास का कौर गिरा दिया। सीताजी के दुःख से दुखी होकर सारा जंगल रोने लगा।

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।।७०।।

जिन महाकृपालु वाल्मीकि ऋषि का शोक व्याध के हाथ से मारे हुए क्रौञ्च को देखकर श्लोक बनकर निकल पड़ा था वे उस समय कुश उपाड़ने निकले थे। रोने का शब्द सुनकर वे सीताजी की ओर आए।

तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिंगदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच।।७१।।

उन्हें देखकर सीताजी ने आँसू पोंछकर चुपचाप उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने गर्भ के चिन्ह देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती हो। आशीर्वाद देकर वे बोले–

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्।।७२।।

बेटी! मैंने योगबल से जान लिया है कि तुम्हारे पति ने झूठे अपजस से डरकर तुम्हें घर से निकाल दिया है। बेटी! यहाँ भी तुम अपने पिता का ही घर समझो और शोक छोड़ दो।

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे।।७३।।

यद्यपि राम तीनों लोकों का दुःख दूर करने वाले हैं, अपनी प्रतिज्ञा के पक्के हैं और अपने मुँह से अपनी बड़ाई भी नहीं करते, फिर भी तुम्हारे साथ जो उन्होंने यह भद्दा व्यवहार किया है इसे देखकर मुझे उन पर बड़ा क्रोध आ रहा है।

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या।।७४।।

तुम्हारे यशस्वी श्वसुर जी मेरे मित्र थे और तुम्हारे पिता जनक जी भी ज्ञानोपदेश देकर बहुत से विद्वानों को संसार के बंधन से छुड़ाते रहते हैं, तुम स्वयं पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हो और फिर तुम में ऐसा दोष ही कौन–सा है जो मैं तुम्हारे ऊपर कृपा न करूँ।

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते।।७५।।

देखो तपस्वियों के साथ रहते–रहते यहाँ के सब जीव बड़े सीधे हो गये हैं। ये किसी से कुछ कहते–सुनते नहीं। इसी आश्रम में तुम भी निर्भय होकर रहो। तुम्हारी पवित्र संतान के जातकर्म आदि संस्कार मैं यहीं करूगाँ।

अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः।।७६।।

पाप मिटाने वाली जिस तमसा के किनारे तपस्वी लोग सदा संध्या–पूजा करते हैं उसमें स्नान करके तुम उसकी रेती पर देवताओं को बलि दिया करो, इससे तुम्हारा मन प्रसन्न रहेगा।

पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषंगामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वम्।।७७।।

यहाँ की मुनि-कन्याएँ तुम्हें सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फूल-फल और पूजा के योग्य अन्न लाकर रख दिया करेंगी और मीठी-मीठी बातें करके तुम्हारा मन भी बहलाया करेंगी।

पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्!।७८।।

जो जल के घड़े तुमसे उठ सकें उन्हें लेकर तुम आश्रम के पौधों को प्रेम से सींचा करो। इससे बड़ा लाभ यह होगा कि बच्चा होने के पहले ही तुम यह सीख जाओगी कि बच्चों से कैसे प्रेम करना चाहिये।

अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मिकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्व स्वमाश्रमं शांतमृगं निनाय।।७९।।

सीताजी ने उनकी कृपा को बहुत सराहा और दयालु वाल्मीकि के साथ उनके आश्रम में चली गयीं। साँझ हो जाने के कारण बहुत से मृग वहाँ वेदी को घेर कर बैठे हुये थे और सिंह आदि जन्तु भी चुपचाप आँख मूँदे पड़े थे।

तामपर्यामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु।।८०।।

जैसे अमावस्या जड़ी-बूटियों और लता वृक्षों को चंद्रमा की वह सारहीन अंतिम कला सौंप देती है जिसका अमृत पितर खींच लेते हैं, वैसे ही ऋषि ने भी शोक से व्याकुल सीता को आश्रम की उन तपस्विनियों के हाँथ सौंप दिया जो सीता जी के वहाँ आ जाने से प्रसन्न हो गई थीं।

ता इङ्गुदस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः।।८१।।

पूजा हो चुकनें पर उन तपस्विनियों ने सीता के रहने के लिए एक पत्तों की कुटिया दे दी जिसमें हिंगोट के तेल का दीया जल रहा था और उसमें नीचे मृगचर्म बिछा हुआ था।

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासंततये बभार।।८२।।

वहाँ सीता जी प्रतिदिन स्नान करके बड़े नियम से रहती थीं, ठीक विधि से अतिथियों की पूजा करतीं थीं, वृक्षों की छाल के कपड़े पहनती थीं और केवल पति का वंश चलाने की इच्छा से ही कन्द-मूल खाकर शरीर धारण करती थीं।

अपि प्रभुः सानुशययोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय।।८३।।

सीताजी ने रो-रोकर जो बातें कही थीं वे सब अयोध्या पहुँचकर लक्ष्मणजी ने राम से यह सोचकर कह दीं कि देखें राम अब भी पछताते हैं या नहीं।

बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः।।८४।।

उन बातों को सुनकर ओस बरसाने वाले पूस के चन्द्रमा के समान राम की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे, क्योंकि उन्होंने सीताजी को अपनी इच्छा से नहीं वरन् कलंक के डर से ही छोड़ा था।

निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः।
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास।।८५।।

वर्णाश्रम-धर्म के रक्षक बुद्धिमान् राम संसार के सुखों का मोह छोड़कर और शोक को रोककर भाइयों के साथ अपने भरे-पूरे राज्य का शासन करने लगे।

तामेकभार्यां परिवादभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः।।८६।।

राजा ने कलंक के डर से अपनी रानी को छोड़ दिया इसलिये मानों बिना सौत की होकर राज्यलक्ष्मी ही उनके हृदय में सुख से निवास करने लगी।

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःख विषेहे।।८७।।

राम ने सीता को त्यागकर किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया, वरन् अश्वमेध यज्ञ करते समय उन्होंने सीता जी की सोने की मूर्ति को ही अपने बाएँ बैठाया था। जब सीता जी ने अपने पति की ये बातें सुनीं तब उनके मन में जो छोड़े जाने का दुःख था वह कम हो गया।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये सीतापरित्यागो नाम चतुर्दशः सर्गः।

महाकवि श्रीकालिदास के रचे हुए रघुवंश महाकाव्य में सीता-परित्याग नाम का चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।

(कालीदास रचित महाकाव्य 'रघुवंश' से)

श्रीसीता-भू-प्रवेश

(पंचदश सर्ग से)

तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षः कपिनरेश्वराः।
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः।।५८।।

कुछ दिन पीछे राम ने अश्वमेध यज्ञ के लिए घोड़ा छोड़ा। जैसे बादल धान के खेत पर जल बरसाते हैं वैसे ही सुग्रीव-विभीषण आदि ने आकर राम के आगे भेंट के धन की वर्षा कर दी।

दिगभ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः।
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यापि।।५९।।

यज्ञ के लिए राम ने तीनों लोकों के ऋषियों को आमन्त्रित किया था। वे ऋषि पृथ्वी से ही नहीं, वरन! सप्तर्षि-मण्डल आदि दिव्य स्थानों से भी राम के पास आए।

उपशल्यनिविष्टैस्तैश्तुर्द्वारमुखी बभौ।
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः।।६०।।

वे लोग आ कर नगर के आस-पास के देहात में टिके हुए थे। जब वे अयोध्या के चारों द्वारों से नगर में पैठे तब चार द्वारों वाली वह अयोध्या ऐसी जाने पड़ने लगी मानों तत्काल सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति हो।

श्लाध्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्यु प्राग्वंशवासिनः।
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जायाहिरणमयी।।६१।।

सीता के त्याग से राम की एक यह भी प्रशंसा हुई कि राम ने किसी दूसरी स्त्री से अपना विवाह नहीं किया। इसलिए यज्ञ में सोने की सीता बनाकर राम ने अपनी पत्नी के स्थान पर बैठा दिया।

विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः।।६२।।

इस प्रकार वह प्रसिद्ध यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसमें आवश्यकता से अधिक तो सामग्री इकट्ठी हुई थी और विशेषता यह थी कि यज्ञ क्रिया में विघ्न करने वाले राक्षस ही उसकी रखवाली कर रहे थे।

अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमित्ततः।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ।।६३।।

तब सीता जी के पुत्र लव और कुश वाल्मीकि जी की आज्ञा से उनकी बनायी हुई रामायण गाते हुए इधर-उधर घूमने लगे।

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किंन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न श्रृण्वताम्।।६४।।

एक तो राम का चरित, उस पर वाल्मीकि जी उसके रचयिता और फिर किन्नरों के समान मधुर कण्ठवाले लव और कुश उसके गायक, फिर बताइये उसमें रह ही क्या गया था कि लोग उसे सुनकर लट्टू न हो जाते।

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली।।६५।।

यह बात राम के कानों तक भी पहुँची। उन्होंने बालकों को बुला भेजा और अपने भाइयों के साथ उन दोनों बालकों के रूप और गीत की मधुरता को आश्चर्य के साथ देखा और सुना।

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।।६६।।

सारी सभा गूँगी होकर उनका गीत सुनती जा रही थी और आँखों से आँसू बहाती जा रही थी। उस समय वह सभा प्रातः काल की उस शान्त वनस्थली के समान दिखाई देने लगी जिसमें वृक्षों से टपटप ओस की बूँदें गिर रही हों।

वयोवेशविसंवादी रामस्य च तयोस्तदा।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत।।६७।।

लोगों ने एक टक होकर राम और उन दो बालकों का एकदम मिलता-जुलता वह रूप देखा जिसमें अंतर इतना ही था कि वे दोनों अभी कुमार थे तथा वनवासियों के वस्त्र पहने हुए थे और राम प्रौढ़ थे तथा राजसी वस्त्र पहने हुए थे।

उभययोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा।।६८।।

जनता को इनके गाने का कौशल देखकर उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना इस बात पर हुआ कि राजा ने उन्हें प्रेम से जो दान दिया वह भी उन्होंने लौटा दिया।

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम्।।६९।।

जब राम ने उनसे पूछा कि तुम्हें किसने संगीत सिखाया है और यह किस कवि की रचना है तब उन्होंने वाल्मीकि जी का नाम बता दिया।

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान्।
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत्।।७०।।

अपने भाईयों को साथ लेकर रामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के पास गए। उन्होंने वाल्मीकिजी के पास जाकर अपने को छोड़कर शेष सारा राज्य उनको भेंट कर दिया।

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः संपरिग्रहम्।।७१।।

दयालु ऋषि ने राम से कहा कि ये दोनों गायक कुमार सीताजी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और तुम्हारे पुत्र हैं। अव तुम्हें चाहिए कि सीताजी को स्वीकार कर लो।

तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः।।७२।।

राम ने कहा कि आपकी पतोहू सीता हमारे सामने ही अग्नि में शुद्ध को चुकी हैं, पर रावण की दुष्टता का विचार करके यहाँ की प्रजा को विश्वास नहीं होता।

ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया।।७३।।

इसलिये यदि सीता अपनी शुद्धता का प्रमाण देकर प्रजा को विश्वास दिलावें, तब मैं आप की आज्ञा से पुत्रों सहित इन्हें ग्रहण कर लूँगा।

इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव।।७४।।

राम की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर वाल्मीकि जी ने शिष्यों को भेजकर सीता जी को आश्रम से इस प्रकार बुलाया मानों वे नियमों के द्वारा अपनी सिद्धि बुला रहे हों।

अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौकसः।
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये।।७५।।

दूसरे दिन राम ने इस काम के लिए प्रजा को इकट्ठा करके वाल्मीकि जी को बुलाया।

स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।
ऋचेवोदर्चिर्षं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः।।७६।।

वाल्मीकी जी लव, कुश और सीता जी को साथ लेकर राम के आगे उपस्थित हुए। पुत्रों के साथ राम के पास जाती हुई सीता जी ऐसी लगती थीं मानों स्वर और संस्कारों के साथ गायत्री सूर्य के पास के पास जा रही हों।

काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा।।७७।।

गेरुए वस्त्र पहने और अपनी आँखे नीची किए हुए सीता जी अपने शान्त शरीर से ही पवित्र दिखाई देती थीं।

जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहृतचक्षुषः।
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्वे फलिता इव शालयः।।७८।।

उन्हें देखते ही सब लोगों ने उन्हें उसी प्रकार अपनी आँखे नीची कर लीं जैसे फले हुए धान के कलम झुक जाते हैं, क्योंकि लज्जा लगी कि हम लोगों ने व्यर्थ ही इस साध्वी पर कलंक लगाया।

तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लौकमित्यशात्।।७९।।

आसन पर बैठे हुए वाल्मीकि जी ने सीता जी से कहा बेटी! जनता के मन में तुम्हारे चरित्र के विषय में जो संदेह हैं वह तुम अपने पति के आगे ही मिटा दो।

अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम्।।८०।।

वाल्मीकि जी के शिष्य ने पवित्र जल लाकर सीता जी को दिया और उसका आचमन करके सीता जी ने यह सत्य वचन कहा।

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि।।८१।।

यदि मैनें मन, वचन, कर्म किसी प्रकार से भी अपना पतिव्रत भंग न किया हो तो हे धरती माता! तुम मुझे अपनी गोद में ले लो।

एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद्भुवः।
शातहृदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ।।८२।।

पतिव्रता सीता के ऐसा कहते ही पृथ्वी फटी और उसमें से बिजली के समान चमकीला एक तेजोमण्डल निकला।

तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी।
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुंधरा।।८३।।

उसमें से नाग के फण पर रक्खे हुये सिंहासन पर बैठी हुई, समुद्र की तगड़ी पहने साक्षात् धरती माता प्रकट हुई।

सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात्।।८४।।

उन्होंने उन सीताजी को अपनी गोद में ले लिया जो राम की ओर टकटकी बाँधे थीं। राम कहते ही रह गये– हैं हैं! यह क्या करती हो, यह क्या करती हो–! पर वे सब के देखते–देखते पाताल में समा गयीं।

धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः।
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः।।८५।।

राम को पृथ्वी पर बड़ा क्रोध आया पृथ्वी से सीता को लौटा लेने के लिये उन्होनें अपना धनुष उठाया। पर ब्रह्मा जी तो सब कुछ जानते ही थे, उन्होंने आकर राम को समझाया और उनका क्रोध शान्त किया।

ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान्।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः।।८६।।

किसी प्रकार यज्ञ समाप्त हुआ और यज्ञ हो जाने पर राम ने ऋषियों को छुट्टी दी। अब वे अपने पुत्रों से उतना ही प्रेम करने लगे जितना सीता जी से करते थे।

(राधेश्याम रामायण 'लवकुश काण्ड' से)

सीता-पताल प्रवेश

अपने-अपने राज को, पुत्र गये हर्षाय।
लव कुश भी राजा हुये, अवध नगर में आय।।

यहाँ की यों कथा समाप्त हुई, आगे का चरित सुनाता हूँ।
बिछुड़ी जो थी सीता वन में कुछ उनका ध्यान दिलाता हूँ।।
जिस समय विजय कर रघुनायक, पुत्रों सह अवध नगर आये
सीता को रथ से लाने हित, आश्रम पर ही तज आये।।
जब यज्ञ कार्य सब शेष हुआ, पुत्रों को राजतिलक कर दी।
तब जननी को लाने के हित, लक्ष्मण को तत्क्षण आज्ञा दी।।
घर से प्रस्थान लषण करके, जब ऋषि के आश्रम नगिचाये।
कुछ मन में सोच था पहले का, नव-दृश्य देखकर चकराये।।

सीता बैठी थी वहाँ, तपसिन रूप बनाय।
तन में खाक रमाय कर, स्वाँसा ब्रह्म चढ़ाय।।

उस सीता सती पुनीता की, खासी एक लगी समाधी थी।
तन सूखे पंजर झलक रहे, मुख ज्योति भव्य दिखलाती थी।।
तन पर साड़ी सादी थी, गेरुवा रंग झलकता था।
इन्द्रियाँ शिथिल सी दिखती थीं, ख़ामोशी रंग जमाता था।
आँखें नीचे को धँसी हुई, गहरी ले रही उँघाई थीं।
करता नहिं कोई शब्द वहाँ, नीरवता सबजाँ छाँई थी।।
वह बरगद वृक्ष घना मोटा, जिसकी खासी ऊँचाई थी।
छाया थी सघन पल्ल्वों की, भूमि सुडौल सुहाई थी।।
उसके सुन्दर फल लाल-लाल, अतिथी पक्षी गण खाते थे।
जठराग्नी को सन्तुष्ट करा, कलरव कर गान सुनाते थे।।

लक्ष्मण थे आकर खड़े, कर कमलों को जोड़।
सीता हरि में मग्न थीं, जग से नाता तोड़।।

देखा लक्ष्मण ने इस विधि से, जब कार्य नहीं कुछ सरता था।
चरणों का जा स्पर्श किया, मुहँ से नहिं शब्द निकलता था।।
आँखे भी झरना बहा रहीं, मोती सा जल ढुरकता था।
माता सीता के कष्टों पर बार-बार पछताता था।।
जिस समय चरण से माता के, मस्तक का यों स्पर्श हुआ।
पलकें हट गई द्वार तज कर, नेत्रों का प्रगट प्रकाश हुआ।।

लक्ष्मण को देखा पड़े, चरण झुकाये माथ।
वनवासिन कुछ चौंककर, बोली करुणा साथ।।

ऐ वीर! कहाँ से आये हो, बोलो क्या समाचार अब है।
कोई आज्ञा नूतन तो नहीं, या बच्चों का उद्गार कुछ है।।
वे गुरुवर के संग में जाकर, अवधेश नगर में छाये हैं।
मुझको है चिन्ता बनी हुई, क्योंकि आचार दिखाये हैं।।
ऐ वीर! बात मानो सच्ची, वे बालक हैं रघुराई के।

लक्ष्मण ने सोचा हृदय, अवसर की है बात।
बोले माता सोच नहिं, बुला रहे हैं तात।।

प्रतिउत्तर में हैं तेज बड़े, देखो शिशु हैं ऋषिराई के।
बोली सीता मैं यहाँ रहूँ वा वहाँ रहूँ, उनकी ही होकर रहती हूँ।।
है एक भरोसा उन्हीं का, चरणों की रज शिर धरती हूँ।
उनकी है मर्यादा बड़ी वे सब कुछ के अधिकारी हैं।
तज देवें या घर में रक्खें, पर सीता प्रेम भिखारी है।।
यह तज उनको नहीं सकती है चाहे देश में हो, परदेश में हो।
इसको नहिं मान की इच्छा है, इस भेष में हो उस भेष में हो।।

सुन सीता के बैन को, भरि आये दोउ नैन।
तब लक्ष्मण कर जोड़कर, बोले अति मृदु बैन।।

तपसिन सीता की बातें सुन लक्ष्मण को अति करूना आई।
होकर विनम्र जोड़ तुरंत, धीरज देकर यों समझाई।।
हे माता क्यों हो विलप रहीं, रघुवर नाता नहिं तोड़े हैं।
एक पत्नी व्रती सदा रह कर, संबंध नेह का जोड़े हैं।।
केवल भूपति के नाते से, अपने को न्यून दिखाया है।
कानन में भेज इसी हित से, जनता का मान बढ़ाया है।।
यदि ऐसा वे आचार किये, तो इसमें उनका दोष नहीं।
जनता का भाव पलट जाता, यदि रहते वे खामोश कहीं।।
हे मातु जरा मन गौर करो, आपी का मन बतलायेगा।
धर्मा-धर्म का विचार लगा, नाहिं रघुवर दोष लगायेगा।।

लक्ष्मण के सुनि तर्क को, खुलीं सीय की आँख।
धीरज कुछ उर में हुआ, कर न सकीं फिर माँख।।

"बोली" ऐ लक्ष्मण! भूले हो, जब छोड़ गये थे कानन में।
तब क्या तुमने सोचा था, क्यों कर जीऊँगीं मैं वन में।।
यद्यपि मैं प्रभु के संग में रह, कानन की विपदा देखे थी।
नदी नालों और पहाड़ों की, दुर्गमता से भी खेले थी।।
पर उस जाँ रखवाली में, हे लक्ष्मण तुम तल्लीन रहे।
राघव का मिलता दर्शन था, बनवासी सब आधीन रहे।।
था इतना यद्यपि सुगम सभी, फिर भी मैं रक्षित रह न सकी।
आखिर रावण की करनी से, कानन बीच आनंद न सकी।।
फिर गौर करो आँखें खोलो, इस बन में कैसे जीती थी।
रक्षक था कोई सगा नहीं, केवल प्रभु चरणों में प्रीती थी।।
यदि जनता राज्य अयोध्या की, दोषी मुझको बतलाती है।
तो इससे भी सीता दुःखी नहीं, उसकी ही आन निभाती है।।

लक्ष्मण करुणा युक्त हो, बोले भरे विलाप।
माता अब वह रो रही, कर-कर के संताप।।

हे अन्तः की जानन हारी, तुम से कुछ भी है छिपा नहीं।

जिस रघुवर ने बन भेजा है, उनके मन में भी पाप नहीं।।
अपने ही दिल से त्यागा था, यदि ऐसा कोई कहता है।
तो इसके हैं परमाण यहाँ, वह मूढ़ मौन क्यों रहता है।।
जिस समय यज्ञ के हित ऋषि ने, दूसरे ब्याह की बात कही।
प्रभु ने उस ही क्षण रोक दिया, फिर उठती वैसी बात नहीं।।
यदि इसका ही है त्याग अर्थ, तो ममता किसको कहते हैं।
घर में रहती वा वन में ही, वे ध्यान सदा ही रखते हैं।।
इस कानन में छुड़वाने से, उनका था खाली हाथ नहीं।।
जिस भूमि पर हों वाल्मीक हो सकता बाकां बाल नहीं।
ऋषि उनके भक्त वे ऋषि के हैं, यह सारे जग में जाहिर है।
हे माता! फिर क्यों दोष लगे, यह मेरी समझ के बाहिर है।।
आखिर में कहना पड़ता है, हैं दुःखी अयोध्या वासी सब।
जिसने त्यागने का मंत्र पढ़ा, निर्दोषी थी कहलाती तब।।
इतना सब होने पर भी तो, प्रभु भावों से समझाया है।
घर भीतर रहने की तो नहीं, हे माता अवध बुलाया है।।

सीता माता ने कहा, यह है सच्ची बात।
भावी जैसी होत है, वैसी सभी दिखात।।

हे लक्ष्मण! किसका दोष कहूँ, सारा है दोष कमाई का।
जो जैसे बीज को बोता है, फल पाता उसी बुराई का।।
नहिं दोष किसी का है कोई, वह मेरा रहा सहाई है।
भावी ने उसके माथे चढ़, बनवास मुझे दिलवाई है।।
उसका भी मुझको सोच नहीं, उससे भी हुई भलाई है।
दुनिया से नाता टूट गया, वैराग्य मुझे अब आई है।।

लक्ष्मण बोले सीय से, मात तुझे है धन्य।
विद्या और विज्ञान में, तुमसा जगत न अन्य।।
सोचो देखो हो गई, मुझको आये देर।
चलने के तैयार हों, अवध नगर की ओर।।

जनता के है हो रही, घर-घर में यों शोर।
माता का होगा दरश, चलो अवध की ओर।।
चलत समय रघुराज का, मुझको था उपदेश
लाना जल्दी फेरकर, मेरा है यह आदेश।।
ताकते होंगे सह प्रजा, अब ना करो विलम्ब।
नगरी पावन दो बना, पग-रज से जगदम्ब।।

लक्ष्मण की बातों को सुनकर, सीता ने प्रभु का ध्यान किया।
अपने हाथों को जोड़-जोड़, जननी ने पुनः प्रणाम किया।।
फिर बोलीं करुणा बैनों से, सुन लें कुछ अरज हमारी है।
किसजां है आपका बास नहीं, किसजां नहिं शक्ति तुम्हारी है।।
हर गुल और चमन पहाड़ों में, आपकी जोति समाई है।
जिनकी आँखे हैं मुंदी हुई, उसको नहिं प्रगट दिखाई है।।
मैं सदैव आपकी दासी हूँ, आपी का मुझे सहारा है।
इस हेतु ध्यान अब धरती हूँ, जो निर्गुण रूप तुम्हारा है।।
अब कहाँ मुझे ले जावोगे, यह अन्तिम विनय हमारी है।
कर कृपा यहीं पर रहने दो, यह दुखिनी दुःख से हारी है।।

इतना कह सीता उठीं किया योग का त्याग
कर जोरे ठाड़ी रहीं, पृथ्वी में मन लाग।।

हे भूमि ? शेषनाग स्वामी, मेरी विपदा को दूर करो।
जो मेरा पतिव्रत भंग न हो, तो विनय हमारी पूर करो।।
है जगती तल में ठौर नहीं, सब जाँ से मुझे निराशा है।
एक हो आधार तुम मुझको, इस हेतु आप में आशा है।।
भूली भटकी बहु कष्ट सही, अब और कष्ट नहीं दीजेगा।
हो जावे बेड़ा पार अभी, पतवार हाथ गह लीजेगा।।
हे प्रभु! फिर एक बार तुमसे, विनती थोड़ी सी करती हूँ।
मेरी भूलों को क्षमा करें, कर जोड़ चरण सिर धरती हूँ।।

सतवन्ती ने पलट कर, किया गुरु का ध्यान।
जिह्वा पर फिर आ गया, आश्रम का गुणगान।।

वे अपने हाथों से जितने पौधों को, नितप्रति सींचा था।
ले लेकर उनका नाम अहो, अमृतमय बैन उलीचा था।।
हे बेला! जूही पलास कदम, मेरा नहीं भुलाना तूँ।
भूली भटकी बातों का अब, जिय में कुछ राग न लाना तूँ।।
हे तुलसी कुटी कदम्ब आदि, अपनी दया नहिं तजियेगा।
देते रहना आशीश मुझे, इस त्यागिनी को नहीं तजियेगा।।
मैं भी अपनी परतिज्ञा को, नहीं भूलूँगी आजन्म कभी।
अपने हृद-पट में रक्खूँगी, देकर तुमको सुस्थान सभी।।

सबकों कर-कर याद यों, मनसा से मिल भेंट।
पृथिवी माता की तरफ, देखा कर मन हेठ।।

देखते समझते कहते ही, जननी ने उदर बिदार दिया।
उसमें से निकले शेषनाग, मस्तक पर दिव्य विमान लिया।।
उस विमान के बीच भाग, पृथिवी माता का आसन था।
बाम पार्श्व में खाली था, रत्नों से जड़ा सिंहासन था।।
दैवी आसुरी शक्तियों की, क्या कहना सुन्दरताई को।
जो ध्यान नहीं आ सकती है, भूतल के रंक व राई को।।
जगमगा रहा था जगमग जग, लाखों की प्रभा समाई थी।
मणियों वा मुक्ता मालों की, कुछ अद्‌भुत सुन्दरताई थी।।
पच्चीकारी ब्रह्म की थी, बेलों बूटों की कमी न थी।
दो मोर सामने पर खोले, उड़ते उनमें नमी न थी।।

सिंहासन को ले अहो, जग जननी बैठाय।
शेषनाग अदृष हुए, शोभा किमि कहि जाय।।

इत लक्ष्मण का हाल बेहाल हुआ, मुख से नहिं शब्द निकलता था।
आँखों से आँसू बहते थे, संताप भरा चित दहता था।।
लाचारी थी प्रभु आज्ञा थी, उसका प्रतिपालन करना था।
इस कारण रथ को लौटाकर, प्रभु ढिग जा यह सब कहना था।।
रथ लौट पड़ा कानन तजकर, प्रभु चरणों की चिन्ता छाई।
पर अश्व तेज नहिं चलते थे, नहिं उनमें थी कुछ प्रभुताई।।
हींस हींस ठोकर खाकर, अड़ जाते थे उस कानन में।
उसकी मन डोरी लगी रही, सीता माता के आनन में।।

करके प्रबल प्रयास तब, पहुँचा रथ प्रभु पास।
खाली रथ को देखकर, रघुवर हुए उदास।।

लक्ष्मण ने पहले चरण छुवा, पीछे संवाद सुना डाला।
राघव के मन अनुराग बढ़ा तत्क्षण ही प्रण एक कर डाला।।
अपने मन से सीमा का मन, एक पलड़े पर रख तौल लिया।
मन मन का वजन बराबर था, बनवासिन ने था कौल किया।
प्रभु के चलने से पहले ही, कर्त्तव्य हमारा जाना है।
इस हेतु मोह ममता तज कर, एक प्रभु में ध्यान लगाना है।।

इतना मन में सोच कर, प्रभु ने बाँधी धीर।
अपने पुत्रों को लिवा, भवन चले रघुबीर।।

स्वामी जितेन्द्रानन्द तीर्थ जी का जन्म 19 अक्टूबर, 1926 को हुआ था। उन्होंने 1982 में संसार त्याग करके बनारस में संन्यास ग्रहण किया। इससे पूर्व वे सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रतिष्ठित अधिवक्ता थे।

फरवरी 1992 में ऋषिकेश से पद यात्रा करते हुए सीतामढ़ी में पधारे। जब वे यहाँ आए यह उस समय स्थान निर्जन तथा ऊबड़-खाबड़ था। पहला वर्ष तो यहाँ ध्यानमग्न रहने की व्यस्तता में ही व्यतीत हो गया।

स्वामी जी ने शिक्षा के प्रसार में तथा निरक्षरता के निवारण में विशेषकर लड़कियों के लिए पूरा ध्यान दिया। उन्होंने "श्री जानकी निकेतन महिला महाविद्यालय" की 6 अक्टूबर, 1992 को स्थापना की।

स्वामी जी ने इस पावन टीले पर महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक तरंगों की अनुभूति की तथा इसे एक ऐतिहासिक महत्त्व के विशेष स्थल के नाते विकसित करने का निर्णय किया जो शन्ति का संदेश देते हुए व्यथित मानवता का कल्याण करेगा।

10-10-1998 को बिजली के एक तार से चिपके एक बालक की रक्षा करते हुए स्वयं भी ब्रह्मलीन हो गये।
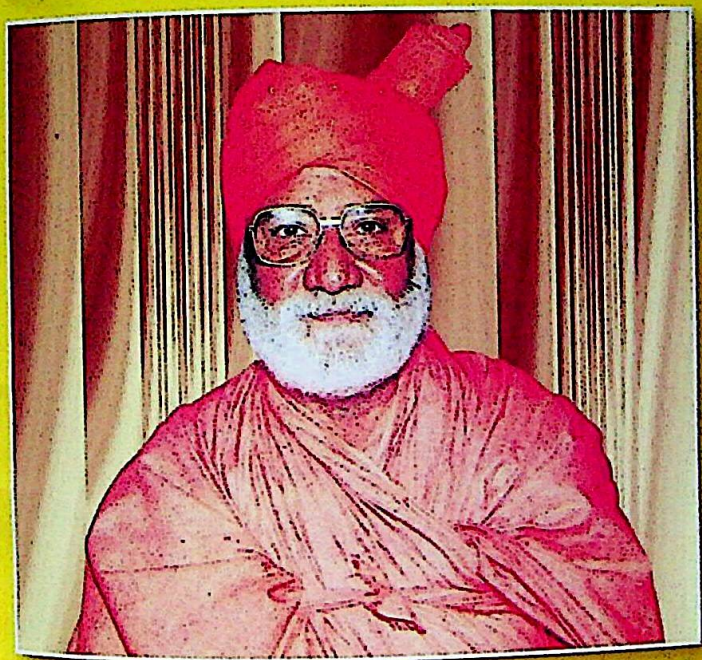
स्वामी जितेन्द्रानन्द तीर्थ

श्री पं. कन्हैया लाल पुंज

स्व. श्रीमती दयावन्ती पुंज

स्व. श्री पं. कन्हैया लाल पुंज

जन्म २६ जून १८९२। अल्पायु में ही मातृ-पितृ-विहीन, बड़ी बहिन द्वारा पालन-पोषण , मैट्रिक पास कर डाकखाने व सेना में अल्पकालीन नौकरी, तदनन्तर अपना सफल व्यवसाय प्रारम्भ। प्रारम्भ से ही धर्म एवं समाज-सेवा की वृत्ति। सुयोग्य पुत्रों के व्यवसाय सम्भालने योग्य होते ही व्यवसाय से १९५६ में संन्यास, धर्म-कार्य एवं समाज-सेवा में लीन रह कर मुख्यतः हरिद्वार में निवास करते हुए अन्तिम १५ वर्ष बिताये । ३-१२-१९७१ को दिल्ली में स्वर्गवास।

स्व. श्रीमती दयावन्ती पुंज

डुमन (तहसील चटवाल) के पं. फकीर चंद जी इस्सर की प्रथम सन्तान, पांच छोटी बहनें व छठा भाई। १४ वर्ष की आयु में पं. कन्हैया लाल पुंज की सहधर्मिणी बनी। सात पुत्रों एवं एक पुत्री का संस्कारप्रद, अनुशासित लालन-पालन। अत्यन्त धर्मपरायण, सत्संग-प्रेमी वृत्ति को सच्चरित्र सन्तानों में भी संक्रान्त किया। दुखियों की सहायता-सहानुभूति सदा स्वभाव में रही। अत्यन्त श्रेष्ठ सात्विक जीवन बिता कर लगभग ९४ वर्ष की आयु में १० अप्रैल १९९५ को दिल्ली में स्वर्गवास।

Design By : CYBER GRAPHIX Alld. Ph. (0532) 402089, 650409